विषय-सूची

१ [illegible] —
([illegible]) ... ...
२ [illegible] ... ...
३ [illegible] ... ...
४ [illegible] ... ...
५ [illegible] ... ...
६ [illegible]
७ [illegible]
८ [illegible]

दो चार प्रारम्भिक शब्द

हिन्दी-उत्पत्ति का इतिहास

संसार परिवर्तनशील है। उसकी प्रत्येक वस्तु अनादि काल से बदल बदल रही है। किसी वस्तु की सत्ता के इतिहास सम्बन्धी खोज करने से पता लगेगा कि जो रूप उसका वर्तमान में है पहले उसका वह रूप न था, तथा इस रूप में आने से पूर्व उसे अनेकानेक रूप बदलने पड़े होंगे।

मनुष्य की आकृति को ही लीजिए। डार्विन के सिद्धान्त के अनुसार उसमें कितना परिवर्तन होकर यह आकृति बनी है! कहाँ बन्दर और कहाँ मनुष्य! कितना अन्तर है!

जो सिद्धान्त अन्यान्य पदार्थों में लागू है, भाषा में भी वही लागू है। उसका इतिहास जटिल तो है सही, परन्तु चित्ताकर्षक और मनोरंजक भी है। जो भाषा जितनी प्राचीन होती है उसमें उतः फेर भी अधिक होते हैं।

भारतवर्ष की सभ्यता प्राचीनतम है, अतः इसकी भाषायें भी प्राचीनतम हैं। इसी कारण इन्हें विकास-सिद्धान्तानुसार कई

भाषा में कितना भेद है! बीच बीच में ब्राह्मणग्रन्थों, उपनिषदों, पुराण और आख्यायिकाग्रन्थों की भाषाओं से संस्कृत का विकास किस गति से हुआ है, इसका ज्ञान हो सकता है।

पीछे कहा जा चुका है कि अन्य देश और जातियों के संमिश्रण से नयी भाषाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। संस्कृत के साथ भी ऐसे ही हुआ। वैदिक भाषा से संस्कृत उत्पन्न हुई और अनार्यों के संपर्क से प्राकृत भाषाएँ बनीं।

यह तो सर्वसम्मत बात है कि प्रतिदिन के व्यवहार और बोलचाल की भाषा में जितना शीघ्र परिवर्तन होता है उतना शीघ्र साहित्य की भाषा में नहीं होता। जब उपरोक्त प्राकृत भाषा भी संस्कृत की तरह साहित्य में प्रयुक्त होने लगी थी और शिष्टसमुदाय के पठन-पाठन के ग्रन्थों की भाषा बन गई, तब बोलचाल की भाषा का प्रवाह स्वतन्त्र रूप से अपनी चाल चलता रहा। उसमें काल-क्रम से कई परिवर्तन भी होते रहे। इस भाषा को 'अपभ्रंश' संज्ञा दी गई। हिन्दी इसी 'अपभ्रंश' की पुत्री मानी गई है।

भिन्न भिन्न प्रान्तों में विभक्त हिन्दी के जो भेद होते गये हैं तदनुसार इसके मुख्य चार प्रकार हैं—राजस्थानी, अवधी, ब्रजभाषा और खड़ीबोली। एक बुन्देलखण्डी भाषा भी मानी गई है, पर वह ब्रजभाषा के ही अन्तर्गत है।

१—राजस्थानी की चार बोलियाँ हैं—मारवाड़ी, जयपुरी, मेवाती और मालवी।

४—खड़ी बोली—खड़ी बोली का इतिहास बहुत जटिल और रोचक है। यह भाषा मेरठ के चारों ओर बोली जाती थी, पर भारत में मुसलमानों के आक्रमण और राज्य स्थापन के कारण इन्होंने दिल्ली की भाषा को, जो उस समय उनके शासन का केन्द्र थी, अपनाया। पहले पहल अरब फारस और तुर्किस्तान से आये हुये सिपाहियों को परस्पर भाव-विनिमय में बड़ी कठिनता होती थी न वे यहाँ की 'हिन्दवी' को समझते थे और न भारतीय उनकी भाषाओं को। परिणाम वही हुआ जो साधारणतः हुआ करता है 'दोनों' ने एक दूसरे की भाषाओं में कुछ कुछ शब्द सीख कर किसी प्रकार आदान-प्रदान का रास्ता निकाला। यों मुसलमानों की उर्दू (छावनी) में पहले पहल एक खिचड़ी पकी, जिसमें [illegible] [illegible] आरम्भ में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] अरबी व्याकरण [illegible] में

प्रवृत्ति एकनो-मुख होकर उधर ही चलती है। इन सब बातों को विचार कर विद्वानों ने हिन्दी भाषा के समय को इन चार भागों में बाँटा है:—

आदि काल, (वीरगाथाकाल, संवत् १०५०—१३७५)
पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल, संवत् १३७५—१७००)
उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल, संवत् १७००—१९००)
आधुनिक काल (गद्यकाल, संवत् १९००—१९८५)

यह समय-विभाग रचनाओं की विशेष प्रवृत्ति के अनुसार किया गया है, इसका अर्थ यह न समझना चाहिये कि किसी विशेष काल में दूसरे प्रकार की रचना होती ही न थी। वीरगाथा-काल में भी कई भक्ति के कविताग्रन्थ मिलेंगे। इसी तरह भक्ति-काल या दूसरे कालों में भी वीरगाथा पर अच्छे-अच्छे कविताग्रन्थ मिलेंगे। आशय यह है कि उस समय उस प्रकार की रचनाओं का बाहुल्य होता था।

यहाँ पर एक बात और बताना आवश्यक है। प्राचीनतम समय से भी जनता की साहित्यिक भाषा प्रायः पद्यमयी ही रही है। हमारे प्राचीनतम ग्रन्थ वेद पद्य में हैं। इनके अतिरिक्त अठारहों पुराण, रामायण, महाभारत, स्मृतियाँ आदि सभी धर्मग्रन्थ पद्य में हैं। हिन्दी के प्राचीनतम ग्रन्थ 'पृथ्वीराज रासो' आदि पद्य में ही हैं।

ईसा के बाद लगभग एक हजार वर्ष तक कोई गद्यग्रन्थ नहीं उपलब्ध होता।

इन्होंने निकलने का दूसरा मार्ग खोज लिया। उन्होंने भगवान् की ओर मुख किया और उसे ही अपनी विपदाओं का निवारक मान उसकी भक्ति में सान्त्वना प्राप्त करने लगे और वे कर ही क्या सकते थे! हिन्दी के प्रसिद्ध प्रसिद्ध कवि इसी काल में हुए हैं। उनमें कुछ मुख्य ये हैं—कबीर, गुरु नानक, दादूदयाल, मलिक मुहम्मद जायसी, गोस्वामी तुलसीदास, नाभादास, सूरदास, रसखान, रहीम आदि।

उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल)

इस समय हिन्दीकाव्य पूर्ण प्रौढ़ हो चुका था। उस समय से पूर्व प्रचलित भक्तिकाव्य-गंगा का प्रवाह अब भी लाखों करोड़ों नर-नारियों की ज्ञान-पिपासा को शान्त कर रहा है। तुलसीदास और सूरदास अब भी काव्यनभोमण्डल पर शशी और सूर की तरह देदीप्यमान हैं।

हिन्दी की ऐसी प्रौढ़ अवस्था में इसकी स्वतन्त्र चालों को रोकने के लिए इसे रस, अलंकार तथा छन्द आदि की शृङ्खलाओं में बाँधने की आवश्यकता पड़ी। इसके पूर्व भी सं० १५६८ में कवि कृपाराम रस का कुछ निरूपण कर चुके थे। इसके पश्चात् १६१५ में रामभूषण और अलङ्कार-चन्द्रिका नाम की दो पुस्तकें निकलीं। उनमें अलङ्कारों का निरूपण था। इस प्रकार कतिपय और ग्रन्थ भी इन्हीं विषयों पर निकलते रहे, किन्तु रीतिग्रन्थों का अखण्डित और अविरल प्रवाह

अँगरेजों से पहले यहाँ के शासक मुसलमान थे। इसलिए उन्हीं की प्रचलित भाषा उर्दू को दफ्तरों और अदालतों में स्थान प्राप्त हुआ। फिर भी एक भयंकर अड़चन आ पड़ी। उर्दू न जनसाधारण की भाषा थी और न साहित्य की। अतः जनता को जिस प्रकार उर्दू की आवश्यकता थी उसी प्रकार अपनी भाषा की भी थी। एक कठिनता और थी। यहाँ की साहित्य-भाषा ब्रजभाषा थी, पर वह ब्रजभूमि के बाहर बोली न जाती थी। इसलिए परस्पर व्यवहार करने के लिए खड़ी बोली का आश्रय लेना पड़ा।

उस समय दशा यह थी कि साहित्य तो था ब्रजभाषा में, पर बोल-चाल की भाषा खड़ी बोली थी। तब तक साहित्य केवल पद्य में ही था। अतः गद्य का साहित्य में कोई स्थान न था। इसका यह आशय नहीं कि गद्य का साहित्य में नितान्त अभाव था। अकबर के समय में गंग कवि ने "चन्द छन्द बरनन की महिमा" नामक पुस्तक खड़ी बोली में इस प्रकार के गद्य में लिखी थी—

"सिद्धि श्री १०८ श्री श्री पातसाहि जी श्री दलपति जी अकबर साह जी आम खास में तख्त पर विराजमान हो रहे। और आम खास भरने लगा है जिसमें तमाम उमराव आय आय कुर्निश बजाय जुहार करके अपनी अपनी बैठक पर बैठजाया करे अपनी अपनी मिसल से।"

का 'शृङ्गार रस मण्डल' नाम का गद्यग्रन्थ मिला है। इनके गद्य का नमूना यह है—

"प्रथम की सखी कहतु है। श्री गोपीजन के चरण विषै सेवक की दासी करि तो इनको प्रेमामृत में डूबिकै इनके मन्दहास्य ने जीते हैं। अमृतसमूह ताकरि निकुंज विषै शृंगाररस श्रेष्ठ रसना कीनो सो पूर्ण होत भई।"

इन्हीं विट्ठलदास के पुत्र गोस्वामी गोकुलनाथ के तीन ग्रन्थ संवत् १६२५ और १६५० के बीच के बने मिले हैं। उनके नाम हैं—चौरासी वैष्णवों की वार्ता, दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता और वनयात्रा। उदाहरण के लिये नीचे लिखा अंश देखिये—

"सो श्री नन्दगाम में रहतो हतो। संखण्डन ब्राह्मण शास्त्र पढ्यो हतो। सो जितने पृथ्वी पर मत हैं सबको खण्डन करतो, ऐसो वाको नेम हतो याही तें सब लोगन ने वाको नाम खण्डन पार्‌यो हतो। सो एक दिन श्री महाराज प्रभुजी के सेवक वैष्णव की मण्डली में आयो। सो खण्डन करन लागयो। वैष्णवन ने कही—जो तेरो शास्त्रार्थ करनो होवै तो पण्डितन के पास जा, हमारी मण्डली में तेरे आयबो को काम नहीं। इहाँ खण्डन मण्डन नाहीं। भगवद्वार्ता को काम है। भगवद्यश सुननो होवै तो इहाँ आवो।"

इन्होंने अपनी भाषा में ब्रजभाषा के अतिरिक्त अरबी, फारसी, मारवाड़ी, गुजराती, पञ्जाबी आदि का भी निसङ्कोच प्रयोग किया है।

इन्होंने सुखसागर में हिन्दुओं की उसी बोलचाल की शिष्ट भाषा का प्रयोग किया है जो उन दिनों सर्वत्र प्रचलित थी। जो रूप भाषा का उस समय कथावाचकों और संस्कृतपंडितों में प्रचलित था, मुंशी जी ने उसी को ही अपनाया। इस प्रकार की संस्कृत-मिश्रित हिन्दी का प्रयोग करने से उन्होंने भावी संस्कृत-साहित्य में प्रयोत्स्यमान भाषा का पूर्ण रूप दे दिया। उदाहरणार्थ उनकी भाषा का कुछ अंश नीचे दिया जाता है।

'इससे जाना गया कि संस्कार का भी प्रमाण नहीं, आरोपित उपाधि है, जो क्रिया उत्तम हुई तो सौ वर्ष में चांडाल से ब्राह्मण हुए और जो क्रिया भ्रष्ट हुई तो वह तुरंत ही ब्राह्मण से चांडाल होता है। यद्यपि [illegible] विचार से हम लोग नास्तिक कहेंगे, हमें इस बात का डर नहीं। जो बात सत्य होय उसे कहना चाहिए, कोई बुरा मान [illegible] इसे [illegible] [illegible] तात्पर्य [illegible] [illegible] [illegible] हुआ [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] और रामायण [illegible] [illegible] कि तमोगुण से [illegible] [illegible] नारायण का नाम लेना है [illegible] ज्ञान तो नहीं है

"धन्य कहिए राजा दधीचि को [illegible] अपने सीस पर चढ़ाया, अपने हाड़ [illegible] [illegible]

ही थे, पर कई एक अन्य लेखक भी इनसे उत्साहित होकर अपने अपने लेख उसमें प्रकाशित कराने लगे।

सम्वत् १९३० में उन्होंने 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' नाम का मौलिक नाटक लिखा और सम्वत् १९३१ में 'बालाबोधिनी' पत्रिका निकाली।

वैदिकी हिंसा' के बाद उनके 'कर्पूरमंजरी' सत्य हरिश्चन्द्र', चन्द्रावली नाटिका', 'मुद्राराक्षस' 'भारत [illegible]' 'अंधेर नगरी', 'नील-देवी' आदि बहुत से नाटक निकले

इन नाटकों के अतिरिक्त उन्होंने 'काश्मीर-कुसुम' [illegible] 'बादशाह-दर्पण' नामक दो इतिहास-ग्रन्थ भी रचे

[illegible]

[illegible]

आप बैठे इत घोडी दूर चले तब सांझ भई तब श्री ठाकुरजी ने कह्यो जो आज यहां मोकूं रहो फेर प्रात सूरज उदेंगे फेर जो मेरे तें फेर चलते उठे ने ऐसे ठिकाने जे [illegible] सूरज [illegible] कोस रहे हतो। तब उनने चले फेर सूरज आये जहां गाम वांके [illegible] और यहां श्री ठाकुरजीकुं बैठाय के [illegible] और [illegible] वाको [illegible] वैष्णवन-

[illegible]

दोष देखोगे पर वह तुम सावधान तो हो जाय। इतना वचन गुरु का मान चेला चला वहाँ आया जहाँ राजा बैठा सोच करता था, आते ही कहा—महाराज! तुम्हें शृंगी ऋषि ने यह शाप दिया है कि सातवें दिन तक्षक डसेगा, अब तुम अपना कार्य्य करो जिससे कर्म्म की फाँसी से छूटो। राजा सुनते ही प्रसन्न हो हाथ जोड़ कहने लगा कि मुझ पर ऋषि ने बड़ी कृपा की जो शाप दिया—क्योंकि मैं माया मोह के अपार शोक-सागर में पड़ा था सो निकाल बाहर किया। जब मुनि का शिष्य विदा हुआ तब राजा ने आप वैराग लिया और जनमेजय को बुलाय राज पाट देकर कहा—बेटा गौ ब्राह्मण की रक्षा कीजो और प्रजा को सुख दीजो। इतना कह आये रनिवास, देखीं नारी सभी उदास, राजा को देखते ही रानियाँ पाँवों पर गिर रो रो कहने लगीं—महाराज! तुम्हारा वियोग हम अबला न सह सकेंगी इससे तुम्हारे साथ जी दें तो भला। राजा बोला—सुनो स्त्री को उचित है कि जिसमें अपने पति का धर्म्म रहै सो करे उत्तम कार्य्य में बाधा न डाले। इतना कह धन जन कुटुम्ब और राज्य की माया तज निर्मोही हो अपना योग साधने को गंगा के तीर आ बैठा। इसको जिसने सुना वह हाय २ कर पछताय २ बिन रोये न रहा और जब ये समाचार मुनियों ने सुना कि राजा परीक्षित शृंगी ऋषि के शाप से मरने को गङ्गा के तीर आ बैठा है। तब व्यास, वशिष्ठ, भरद्वाज, कात्यायन, पराशर, नारद, विश्वामित्र, वामदेव, जमदग्नि, आदि अट्ठासी सहस्र ऋषि आये, और आसन बिछाय २ पाँत २ बैठ गये और अपने २ शास्त्र विचार २ अनेक

पृथ्वी गाय का रूप धर, डकराती देवलोक में गई और इन्द्र की सभा में जा सिर झुकाय उसने अपनी सब पीर कही कि महाराज संसार में असुर आनि पाप करने लगे जिनके डर से धर्म तो उठ गया यदि तुम्हें आज्ञा हो तो नगर छोड़ रसातल को जाऊँ। तब इन्द्र सब देवताओं को साथ ले ब्रह्मा के पास गये ब्रह्मा सुन सब को महादेव जी के निकट ले गये, महादेव भी सब को साथ ले वहाँ गये जहाँ क्षीर-समुद्र में नारायण सो रहे थे। [illegible] इन्द्र सब देवताओं को [illegible] [illegible] स्तुति करने लगे [illegible] [illegible] धारण किया. [illegible]

[illegible]

ध्यान धरे। इस भाँति स्तुति कर अक्रूर ने प्रभु के चरणों का ध्यान धर कहा—कृपानाथ! मुझे अपनी शरण में रक्खो।

मथुरापुरी-प्रवेश

श्रीशुकदेव जी बोले कि महाराज! जब श्रीकृष्णचन्द्र ने नट [illegible] भाँति जल में अपना रूप छिपाय कर लिये, तब अक्रूर जी ने [illegible] प्रणाम किया। जिस [illegible]

[illegible]

इतना वचन नन्द महर के मुख से निकलते ही आनन्द कर दोनों भाई अपने ग्वालबाल सखाओं को साथ ले नगर देखने चले। आगे जाय देखें तो नगर के बाहर चारो ओर बन उपबन फूल फल रहे हैं, जिन पर पक्षी बैठे अनेक अनेक भाँति की मन भावन बोलियाँ बोलते हैं। और बड़े बड़े सरोवर निर्मल जल से भरे हैं उनमें कमल फूले हुए जिन पर भौंरों के झुण्ड के झुण्ड गूँज रहे और तीर पर हंस सारस आदि पक्षी कलोलें कर रहे, [illegible] और कहीं कहीं वाड़ियों [illegible]

[illegible]

कुवलया-वध

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि—महाराज! भोर ही इत नन्द उपनन्द सब बड़े २ गोप रंगभूमि की सभा में गये, तब श्रीकृष्णचन्द्र जी ने बलदेव जी से कहा कि भाई! सब गोप आगे गये, अब विलम्ब न करिये, शीघ्र ग्वालबाल सखाओं को साथ ले रंगभूमि देखने चलिये।

इतनी बात के सुनते ही बलराम जी उठ खड़े हुए, और सब ग्वालबाल सखाओं से कहा कि भाइयो! चलो, रंगभूमि की रचना देख आवें। यह वचन सुनते ही तुरन्त सब साथ हो लिये, निदान श्रीकृष्ण बलराम नटवर भेष किये, ग्वालबाल सखाओं को साथ लिये, चले २ रंगभूमि की पौर पर आय खड़े हुए। जहाँ पर [illegible] कुवलयापीड़ [illegible] था।

चौ०—[illegible] बलराम पुकारी॥
[illegible]॥
[illegible]॥
[illegible]॥

[illegible]

चौपाई

हांक सुनत अति कोप बढ़ायो। झटकि सूँड बहुरों गज धायो॥
रहे उदर तर द्बकि मुरारी। गयो जान गज रह्यो निहारी॥
पाछे प्रकट फेर हरि टेरो। बलदाऊ आगे तें घेरो॥
लागे गजहि खिलावन दोऊ। भौचक रहे देख सब कोऊ॥

महाराज! उसे कभी बलराम सूँड पकड़ खैंचते थे, कभी स्याम पूँछ पकड़, और जब वह इन्हें पकड़ने को आता था, तब ये अलग हो जाते थे, कितनी एक बेर ताईं उससे ऐसे खेलते रहे जैसे बछड़ों के साथ बालपन में खेलते थे। निदान हरि ने पूँछ पकड़ फिराय उसे दे पटका और मारे घूँसों के मार डाला, दाँत उखाड़ लिये, तब उसके मुँह से लोहू नदी की भाँति बह निकला। हाथी के मरते ही महावत ललकार कर आया प्रभु ने उसे भी हाथी के पाँव तले झट मार गिराया, और हँसते २ दोनों भाई नटवर भेष किये एक २ दाँत हाथी का हाथ में लिये रङ्गभूमि के बीच जा खड़े हुये। उस काल नन्दलाल को जिन २ ने जिस २ भाव से देखा, उन २ को वसी २ भाव से दृष्टि आये। मल्लों ने मल्ल माना, राजाओं ने राजा जाना, देवताओं ने अपना प्रभु बूझा, ग्वालबालों ने सखा, नन्द उपनन्द ने बालक समझा, और पुर की युवतियों ने रूपनिधान, और कंसादिक राक्षसों ने काल समान देखा। महाराज! इनको निहारते ही कंस अति भयमान हो पुकारा; अरे मल्लो! इन्हें पछाड़ मारो, मेरे आगे से टालो।

इतनी बात ज्यों कंस के मुँह से निकली त्यों सब मल्ल गुरु

दो०—सिर सों सिर भुज सों भुजा, दृष्टि दृष्टि सों जोरि।
चरणा चरणा गहि भपटि पें, लपटन झपट झकोरि॥

इस काल सब लोग इन्हें उन्हें देख देख आपस में कहने लगे कि, भाइयो! इस सभा में अति अनीति होती है। देखो कहाँ ये बालक रूपनिधान, कहाँ ये मल्ल महा बलवान, सो इनमें भी कंस विचार, न करे सो धर्म जाय; इससे अब यहाँ रहना उचित नहीं क्योंकि हमारा कुछ बस नहीं चलता।

महाराज! इधर तो ये सब लोग यों कहते थे, और उधर श्रीकृष्ण बलराम मल्लों से मल्ल युद्ध करते थे। निदान इन दोनों भाइयों ने उन दोनों मल्लों को पछाड़ मारा, उनके मरते ही सब मल्ल आन टूटे प्रभु ने एक एक के सिरों को मार गिराया। तिस समय हरिभक्त तो प्रसन्न हो बाजन दमामे दमाड़ जय जयकार करने लगे, और देवता आकाश से अपने विमानों में बैठे कृष्ण-यश गाय गाय फूल बरसाने लगे, और कंस अति दुख पाय व्याकुल हो रिसाय अपने लोगों से कहने लगा—क्यों बजाते बाजे! बाजे बजाते हो, तुम्हें क्या कृष्ण की जीत भाती है?

ये दो बालक हैं इन्हें पकड़ बाँध सभा से बाहर ले जाओ, और देवकी समेत उग्रसेन वसुदेव कपटी को पकड़ लाओ। पहिले उन्हें मार पीछे इन दोनों को भी मार डालो। इतना वचन कंस के मुख से निकलते ही सबों के देखते देखते सब असुरों को ढकेल कर के जाय, उछल के वहाँ जा पहुँचे, जहाँ कंस ऊँचे मचान पर बैठे रहते थे, जहाँ अपने सिंहासन पर कंस बैठा था। तहाँ इन्हें आते

[illegible] कीजिये । प्रभु [illegible]—
[illegible] का अधिकार नहीं, [illegible]

[illegible]

न पाते। इतना कह सब आभूषण नन्द महर के आगे धर प्रभु ने निर्मोही हो कहा—

चौ०—मैया सों पालागन कहियो। हम पै प्रेम करे तुम रहियो।

इतनी बात श्रीकृष्ण के मुँह से निकलते ही नन्दराय तो अति उदास हो लगे लम्बी साँसें लेने और ग्वालबाल विचार कर मन ही मन में यों कहने लगे कि यह क्या अचम्भे की बात कहते हैं इस से ऐसा समझ में आता है कि अब ये कपट कर जाया चाहते हैं। नहीं तो ऐसे निठुर वचन न कहते, महाराज! निदान [illegible] बोले—भैया 'कन्हैया अब मथुरा में [illegible] क्या काम है? जो निठुराई कर पिता को छोड़ यहाँ रहते हैं। [illegible] सो मारा, सब काम सन्वारा, अब नंद के साथ हो [illegible] वृन्दावन में चल कर [illegible] कीजिये। यहाँ के [illegible] मन में [illegible] न पावेंगे।

[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible] —

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible]

सिंह! तुम इतना क्यों घबराते हो, पहिले यही विचारो कि मथुरा और वृन्दावन में अन्तर क्या है। तुम वे हम कहीं दूर तो नहीं चले गये। इतना दुःख करते हो, वृन्दावन के लोग दुःखी होंगे इसलिये मुझे भेज देते हैं।

[illegible] प्रभु ने नन्द महर को समझाय, [illegible] घर [illegible] बोले — प्रभु [illegible] क्या है? [illegible] नहीं [illegible]। [illegible]

[illegible]।

दोहा — [illegible]।
[illegible]।
[illegible]।

[illegible] —

दोहा — [illegible],
[illegible]।
[illegible]।

[illegible]

ऊधो-वृन्दावन-गमन

श्रीशुकदेव जी बोले कि—पृथ्वीनाथ ! श्रीकृष्णचन्द्र ने वृन्दावन की सुरति करी सो मैं सब लीला कहता हूँ, तुम चित्त दे सुनो, कि एक दिन हरि ने बलराम जी से कहा कि, भाई ! सब वृन्दावन-वासी हमारी सुरत कर अति दुख पाते होंगे। क्योंकि जो हमने उनसे अवधि की थी सो बीत गई। इससे अब उचित है कि किसी को वहाँ भेज दीजे, जो जाकर उनका समाधान कर आवे।

यो भाई से कह कर हरि ने उद्धव को बुलाय के कहा कि, सुनो उद्धव ! एक तो तुम हमारे बड़े सखा हो, दूजे अति चतुर ज्ञानवान और धीर, इसलिये हम तुम्हें वृन्दावन भेजा चाहते हैं कि तुम जाकर नन्द यशोदा और गोपियों को ज्ञान दे उनका समाधान कर आओ, और माता रोहिणी को ले आओ। उद्धव जी ने कहा जो आज्ञा।

फिर श्रीकृष्णचन्द्र जी बोले कि, तुम प्रथम नन्द महर और यशोदा जी को ज्ञान उपजाय उनके मन का मोह मिटाय ऐसे समझाय कर कहियो, जो वे मुझे निकट जान दुख न करें पुत्रभाव छोड़ ईश्वर मान भजें।

महाराज ! ऐसे उद्धव को कह दोनों भाइयों ने मिल एक पाती लिखी, जिसमें नन्द यशोदा समेत सब ब्रजवासियों को तो यथा योग्य प्रणाम आशीर्वाद, और सब ब्रज युवतियों को जोग का उपदेश लिख उद्धव के हाथ दी। और कहा कि यह पाती

बैठे और पूछने लगे कि कहो उद्धव जी! शूरसेन के पुत्र हमारे परम मित्र वसुदेव जी कुटुम्ब सहित आनन्द से हैं, और हम से कैसी प्रीति रखते हैं। यों कह फिर बोलेः—

चौ०-कुशल हमारे सुत की कहो। जिन के संग सदा तुम रहो॥
कबहूँ वे सुधि करत हमारी। उन बिन दुःख पावत हम भारी॥
सबहीं सों आवन कह गये। बीती अवधि बहुत दिन भये॥

नित उठ यशोदा दही बिलोय माखन निकाल हरि के लिये रखती है। उसकी और ब्रजगोपियों की जो उनके प्रेम रंग में रंगी हैं, तिनकी सुरत कभी कान्ह करते हैं कि नहीं।

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि पृथ्वीनाथ! इसी रीति से समाचार पूछते और श्रीकृष्णचन्द्रकी पूर्व लीला गाते २ नन्दराय जी तो प्रेम रस भीज इतना कह प्रभु का ध्यान धर अवाक्य हुए:—

चौ०-महाबली कंसादिक मारे। अब हम काहे कृष्ण बिसारे॥

कि इस बीच अति व्याकुल हो सुधि बुधि देह की बिसारे मन मारे रोती यशोदा रानी उद्धव जी के निकट आय राम कृष्ण की कुशल पूँछ बोली—कहो उद्धव जी! हरि हम बिन वहाँ कैसे इतने दिन रहे? और क्या संदेशा भेजा है, कब आय दर्शन देंगे। इतनी बात के सुनते ही पहले तो उद्धव जी ने नन्द यशोदा जी को श्रीकृष्ण बलराम की पाती बाँच सुनाय पीछे समझा कर कहने लगे कि जिनके घर में भगवान् ने जन्म लिया और बाललीला कर सुख दिया, तिनकी महिमा कौन कह सके। तुम बड़े भाग्यवान् हो, क्योंकि जो आदि पुरुष अविनाशी शिव विरञ्चि के कर्ता जिनके—

आचमन कर आसन पै बैठे, और स्नान ध्यान सन्ध्या पूजा तर्पण से निश्चिन्त हो लगे जप करने।

अक्रूर-हस्तिनापुर गमन

श्रीशुकदेव जी बोले कि, पृथ्वीनाथ! जब ऐसे श्रीकृष्ण जी ने अक्रूर के मुख से सुना, तब इन्होंने उन्हें पाण्डवों की सुधि लेने को बिदा किया, वे रथ पर बैठ चले। कई एक दिन में मथुरा से हस्तिनापुर पहुँचे और रथ से उतर जहाँ राजा दुर्योधन अपनी सभा में सिंहासन पर बैठा था, वहाँ जाय जुहार कर खड़े हुए। इन्हें देखते ही दुर्योधन सभा समेत उठ कर मिला, और अति आदर मान से अपने पास बिठाय इनकी कुशल क्षेम पूछ बोला:—

चौपाई

नीके सूरसेन बसुदेव। नीके हैं देवक बलदेव॥
उग्रसेन राजा कहि देव। जिनके बाहु का सुधि लेव॥
सुनि जग करत हैं काज। जिनके न कछू भी है काज॥

ऐसे कह दुर्योधन ने कहा—अक्रूर जब मुख ही ना, और मन ही मन कहने लगा कि यह पाण्डवों का भेदी है, इसे यहाँ रहना उचित नहीं क्योंकि ये हैं सोइ जो बात देखें सो जाय कहें, इन से कुछ अच्छा नहीं।

वे बिदा अक्रूर जी वहाँ से उठ विदुर के घर जा पहुँचे, वहाँ उन्हें देखते ही प्रसन्न हो विदुर भवन में ले जाय ...

चौपाई

भीम युधिष्ठिर अर्जुन भाई। इनको दुख तुम कहियो आई॥

जब ऐसे दीन हो कुन्ती ने कहे बैन, तब सुन कर अक्रूर ने भर लिये नयन, और समझा के कहने लगा कि, माता! तुम कुछ चिन्ता मत करो। ये पाँचों पुत्र तुम्हारे हैं सो महाबली यशस्वी होंगे। शत्रु और दुष्टों को मार करेंगे निकन्द, इनके पक्षी हैं श्रीगोविन्द, यों कह फिर अक्रूर जी बोले कि, श्रीकृष्ण बलराम ने मुझे यह कह तुम्हारे पास भेजा है कि बुआ से कहियो किसी बात से दुख न पावें, हम बेग ही तुम्हारे निकट आते हैं।

महाराज! ऐसे श्रीकृष्ण की कही बातें कह अक्रूर जी कुन्ती को समझाय बुझाय आशा भरोसा दे बिदा हो विदुर को साथ ले धृतराष्ट्र के पास गये, और उनसे कहा तुम पुरखा होय के ऐसी अनीति क्यों करते हो? जो पुत्र के बश होय अपने भाई का राजपाट ले भतीजों को दुख देते हो, यह कहाँ का धर्म है, जो धर्म करते हो।

चौपाई

लोचन गये न सूझै हिये। कुल बहि जाय पाप के किये॥

तुमने अन्धे भये बैठे बिठाये क्यों भाई का राज्य लिया और भीम युधिष्ठिर को दुख दिया।

इतनी बात के सुनते ही धृतराष्ट्र अक्रूर का हाथ पकड़ बोला कि, मैं क्या करूँ मेरा कहा कोई नहीं सुनता। वे सब अपनी २ मति से चलते हैं। मैं तो इनके सोंहीं मूर्ख हो रहा हूँ, इस से इनकी बातों में कुछ नहीं बोलता, एकान्त में बैठ चुपचाप अपने

कर हाथ जोड़ शिर नाय के कहा कि, हे शिव विरञ्चि के ईश ! तुम्हारा ध्यान अगोचर है सदा सुर मुनि ऋषि योगीश । तुम हो अलख अगोचर अभेद, कोई नहीं जानता तुम्हारा भेद ।

चौपाई

मुनि जोगीश्वर इक चित ध्यावत । तिनके मन तुम कबहूँ न आवत ॥
हमको घरही दर्शन देतु मानत प्रेम भक्त के हेतु ॥
जैसे मोहन लीला करो काहू पै नहिं जाने परो ॥
[illegible] से न्यारे [illegible] तुम सो करत लोक व्यवहार ॥
[illegible] आरतो [illegible] ॥
[illegible] कृपासिंधु ॥

[illegible] कहने लगे कि, हे दीनदयालु [illegible]

[illegible]

महाराज! हमारा तो यही काम है कि मसान में आय चौकी दे और जो मृतक आवे उसका कर ले पुनि हमारे घरबार की चौकसी करे। तुमसे यह हो सके तो मैं रुपये दूँ और तुम्हें सेवक रक्खूँ। राजा ने कहा—अच्छा मैं यह भी तुम्हारी सेवा करूँगा तुम इन्हें रुपये दो। महाराज! इतना वचन राजा के मुख से निकलते ही स्वपच ने विश्वामित्र को रुपये गिन दिये। वह ले अपने घर गया और राजा वहीं रह उसकी सेवा करने लगा। कितने एक दिन पीछे कालवश हो राजा हरिश्चन्द्र का पुत्र रोहिताश्व मर गया। उस मृतक को ले रानी मरघट में गई और ज्यों किया चाहे अग्निसंस्कार करने त्योंही राजा ने आय कर माँगा।

चौ०—रानी विलखि कही सिर नाय। देखो मृतक हिये तुम राय॥

यह तुम्हारा पुत्र रोहित है और देने को मेरे पास और कुछ नहीं एक यही चीर है जो पहिरे खड़ी हूँ। राजा ने कहा—अब इसमें कुछ बस नहीं है स्वामी के काज पर खड़ा हूँ जो अपना धर्म न करूँ तो सेवा [illegible]। महाराज! इस बात के सुनते ही रानी ने ज्योंही [illegible] पर हाथ डाला [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] किया। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हरिश्चन्द्र ने [illegible] [illegible] [illegible] कि, हे हरिश्चन्द्र! धनि धन्य! हरिश्चन्द्र [illegible] [illegible]

चौ०—ऐसे दाता भये अपार। तिनको यश गावत संसार॥

राजा! यों कह श्रीकृष्णचन्द्र जी ने जरासन्ध से कहा कि, महाराज! जैसे आगे और युगों में धर्म्मात्मा दानी राजा हो गये हैं तैसे अब इस काल में तुम हो। ज्यों आगे उन्होंने याचकों की अभिलाषा पूरी की त्यों तुम अब हमारी आश पुजाओ, कहा है.—

दो०—याचक काहु न माँगई, दाता काहु न देय।
गृह सुत सुन्दरि लाभ नहिं, तन धन दे यश लेय॥

इतना वचन प्रभु के मुख से निकलते ही जरासन्ध बोला कि याचक को दाता की पीर नहीं होती तो भी दाती धीर अपनी प्रकृति नहीं छोड़ता इसमें सुख पावे कै दुःख। देखो हरि ने कपट रूप कर वामन बन राजा बलि के पास जाय तीन पग पृथ्वी मांगी। उस समय शुक्र ने बलि को चिताया, तौ भी राजा ने अपना प्रण न छोड़ा।

चौ० देह समेत मही तिन दई। ताकी [illegible] [illegible]॥
याचक विष्णु कहा यश लीना [illegible]॥

इससे तुम पहिले अपने तीनों भेद कहो तब जो तुम मांगो [illegible] मैं मिथ्या नहीं भाषता [illegible] हम [illegible] असंभव [illegible] भांति हम [illegible] और ये दोनों अर्जुन, भीम हमारे फुफेरे भाई हैं हम युद्ध [illegible] तुम्हारे पास आये हैं हमसे युद्ध [illegible] [illegible] आये हैं और कुछ नहीं मांगने [illegible] [illegible]चन्द्र जी से सुन जरासन्ध हँस [illegible] नहीं [illegible] मेरे मोहा से भाग चुके हैं और [illegible]

कड़ी बेड़ी कटवाय छौर कराय निहलाय धुलवाय षट्रस भोजन खिलाय वस्त्र आभूषण पहराय शस्त्र अस्त्र बँधवाय पुनि हरि के सोंहीं लिवाय लाया। उस काल श्रीकृष्ण जी ने उन्हें चतुर्भुजी हो शंख चक्र गदा पद्म धारण कर दर्शन दिया। प्रभु का स्वरूप भूप देखते ही हाथ जोड़ बोले—नाथ! तुम संसार के कठिन बंधन से जीव को छुड़ाने हो। तुम्हें जरासंध की बंदि से हमें छुड़ाते क्या कठिन था? जैसे आपने कृपाकर हमें इस कठिन बन्धन से छुड़वाया तैसे ही अब हमें गृहरूप कूप से निकाल काम, क्रोध, लोभ, मोह से छुड़ाइये जो हम एक एकान्त बैठ आपका ध्यान धरैं और भवसागर तरैं। श्रीशुकदेव जी बोले कि, राजा! जब सब राजाओं ने ऐसे ज्ञान वैराग भरे वचन कहे तब श्रीकृष्णचन्द्र प्रसन्न हो बोले कि सुनो जिसके मन में मेरी भक्ति है वे निस्संदेह भुक्ति मुक्ति पावेंगे। बंध मोक्ष मन ही का कारण है, जिसका मन स्थिर है तिन्हें घर और वन समान है। तुम किसी बात की चिन्ता मत करो आनंद से घर में बैठ नीति सहित राज्य कर प्रजा को पालो, गो ब्राह्मण की सेवा में रहो, झूंठ मत भाखो, काम लोभ क्रोध अभिमान तजो, भाव भुक्ति से हरि को भजो, तुम निस्संदेह परमपद पाओगे। संसार में आय जिसने अभिमान किया वह बहुत न जिया, देखो अभिमान ने किसे २ न खो दिया।

चौपाई

सहस बाहु अति बली बखान्यो। परशुराम ताको बल भान्यो॥
वेणु भूप रावण हो भयो। गर्व्व आपने सोऊ गयो॥

चित दे सुनो। बीस सहस्र आठ सौ राजाओं के आते ही चारों ओर के और जितने राजा थे क्या सूर्यवंशी और क्या चन्द्रवंशी तितने सब आय हस्तिनापुर में उपस्थित हुए। उस समय श्रीकृष्ण-चन्द्र और राजा युधिष्ठिर ने मिल कर सब राजाओं का सब भाँति शिष्टाचार कर समाधान किया और हर एक को एक एक काम यज्ञ का सौंपा। आगे श्रीकृष्णचन्द्र जी ने राजा युधिष्ठिर से कहा कि, महाराज! भीम अर्जुन नकुल सहदेव सहित हम पाँचों भाई तो सब राजाओं को साथ ले ऊपर की टहल करें और आप ऋषि मुनि ब्राह्मणों को बुलाय यज्ञ का आरम्भ कीजिये। महाराज! इतनी बात के सुनते ही राजा युधिष्ठिर ने सब ऋषि मुनि ब्राह्मणों को बुलाय कर पूछा कि, महाराज! जो जो वस्तु यज्ञ में चाहिये सो २ आज्ञा कीजै। महाराज! इस बात के सुनते ही ऋषि मुनि ब्राह्मणों ने ग्रंथ देख देख यज्ञ की सब सामग्री एक पत्र पर लिख दी और राजा ने वोंहीं मँगवाय उनके आगे धरवा दी। ऋषि मुनि ब्राह्मणों ने मिल यज्ञ की वेदी रची, चारों वेद के मत ऋषि मुनि ब्राह्मण वेदी के बीच आसन बिछा २ आय बैठे। पुनि पवित्र होय स्त्री सहित गाँठ जोड़ बाँध राजा युधिष्ठिर भी आय बैठे और द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, धृतराष्ट्र, दुर्योधन, शिशुपाल आदि जितने योद्धा और बड़े बड़े राजा थे वे भी आन बैठे। ब्राह्मणों ने स्वस्तिवाचन कर गणेश पुजवाय, कलश स्थापन कर ग्रहस्थापन किया। राजा ने भरद्वाज, गौतम, वशिष्ठ, विश्वामित्र, वामदेव, पराशर, व्यास, कश्यप आदि बड़े २ ऋषि मुनि ब्राह्मणों का बरन किया और उन्होंने वेद मंत्र पढ़ पढ़ सब देवताओं

करो, खड़े खड़े देखो यह आपसे आप ही मारा जाता है। मैं इसके सौ अपराध सहूँगा, क्योंकि मैंने वचन हारा है। सौ से बढ़ती न सहूँगा, इसलिये मैं छमा करता जाता हूँ। महाराज! इतनी बात के सुनते ही सब ने हाथ जोड़ श्रीकृष्णचन्द्र से पूछा कि कृपानाथ! इसका क्या भेद है जो आप इसके सौ अपराध क्षमा करियेगा। सो कृपा कर हमें समझाइये जो हमारे मन का सन्देह जाय। प्रभु बोले कि जिस समय यह जन्मा था तिस समय इसके तीन नेत्र और चार भुजा थीं। यह समाचार पाय इसके पिता दमघोष राजा ने ज्योतिषियों और बड़े बड़े पण्डितों को बुलाय के पूछा कि यह लड़का कैसा हुआ? इसका विचार कर मुझे उत्तर दो। राजा की बात सुनते ही पण्डितों और ज्योतिषियों ने शास्त्र विचार के कहा कि महाराज! यह बड़ा बली और प्रतापी होगा और यह भी हमारे विचार में आता है कि जिसके मिलने से इसकी एक आँख और दो बाँह गिर पड़ेंगी यह उसी के हाथ मारा जायगा। इतना सुन इसकी माँ महादेई सूरसेन की बेटी वसुदेव की बहिन हमारी फूफी अति उदास भई और आठ पहर पुत्र ही की चिन्ता में रहने लगी। कितने एक दिन पीछे एक समय पुत्र को लिये लिये वे घर मथुरा में आईं और इसे हमने निरखा। जब यह मुझ से मिला तब इसकी एक आँख और दो बाँह गिर पड़ीं। तब फूफी ने मुझे वचन बद्ध करके कहा कि इसकी मीच तुम्हारे हाथ है तुम इसे मत मारियो, मैं यह भीख तुम से माँगती हूँ। मैंने कहा—अच्छा सौ अपराध हम इसके न गिनेंगे, इस उपरान्त अपराध करेगा तो हनेंगे।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज! यज्ञ के पूर्ण होते ही श्रीकृष्णजी राजा युधिष्ठिर से विदा हो सब सेना ले कुटुम्ब सहित हस्तिनापुर से चले २ द्वारकापुरी पधारे। प्रभु के पहुँचते ही घर २ मंगलाचार होने लगा और सारे नगर में आनन्द हो गया।

सुदामा-द्वारका-गमन

श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज! अब मैं सुदामा की कथा कहता हूँ कि, जैसे वह प्रभु के पास गया और उसका दरिद्र कटा, सो तुम मन दे सुनो। दक्षिण दिशा की ओर है एक द्राविड़ देश, जहाँ विप्र और वणिक बसते थे नरेश। जिस के राज्य में घर घर होता था भजन स्मरण और हरि का ध्यान, पुनि सब करते थे तप, यज्ञ, धर्म्म, दान और साधु सन्त गौ ब्राह्मण का सन्मान।

चौ०—ऐसे सबही तिहि ठौर। हरि बिन कछू न जानें और॥

तिसि देश में सुदामा नाम ब्राह्मण श्रीकृष्णचन्द्र का गुरुभाई अतिदीन तनक्षीण महादरिद्री ऐसा कि जिसके घर पै न थाल न खाने को कुछ रहता था। एक दिन सुदामा की स्त्री दरिद्र से अति घबराय, महादुःख पाय, पति के निकट जाय, भय खाय, डरती काँपती बोली कि, महाराज! अब इस दरिद्र के हाथ से महादुःख पाते हैं। जो आप इसे खोया चाहिये तो मैं एक उपाय बताऊँ ब्राह्मण बोला—सो क्या? कहा तुम्हारे परममित्र त्रिलोकी-नाथ द्वारकावासी श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द हैं, जो उनके पास जाओ तो यह जाय। क्योंकि वे अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष के दाता

आय। सुदामा बोला कि, हे प्रिये! यह माया बड़ी ठगनी है, इसने सारे संसार को ठगा है और ठगती है, और ठगेगी। सो प्रभु ने मुझे दी और मेरे प्रेम की प्रतीति न की; मैंने उनसे कब माँगी थी जो उन्होंने मुझे दी! इसी से मेरा चित्त उदास है। ब्राह्मणी बोली, स्वामी जी! तुमने तो श्रीकृष्णचन्द्र से कुछ न माँगा था पर वे अन्तर्यामी घट घट की जानते हैं मेरे मन में धन की वासना थी, सो प्रभु ने पूरी की। तुम अपने मन में और कुछ मत समझो। इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज! इस प्रसंग को जो सदा सुने सुनावेगा; सो सब जगत् में आय दुःख कभी न पावेगा, और अन्तकाल वैकुण्ठ धाम जावेगा।

वसुदेव-यज्ञकरण

श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज! अब मैं सब ऋषियों के आने की और वसुदेव जी के यज्ञ करने की कथा कहता हूँ तुम चित्त दे सुनो। महाराज! एक दिन राजा उग्रसेन, शूरसेन, वसुदेव, श्रीकृष्ण, बलराम, सब यदुवंशियों समेत सभा किये बैठे थे और सब देश देश के नरेश भी उपस्थित थे कि इस बीच श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द के दर्शन की अभिलाषा कर व्यास, वसिष्ठ, विश्वामित्र, वामदेव, पराशर, भृगु, पुलस्त्य, भरद्वाज, मार्कण्डेय आदि अठासी सहस्र ऋषि वहाँ आये और तिनके साथ नारद जी भी। उन्हें देखते ही सभा की सभा सब उठ खड़ी हुई पुनि सब दण्डवत् कर पाटम्बर के पाँवड़े डाल अन्दर लाय ले

सत्यवादी और हरिभक्त थे उनकी स्त्री का नाम उरना था उसके छः बेटे थे, एक दिन छहों भाई तरुण अवस्था में प्रजापति के सन्मुख जा हँसे, उनको हँसना देख प्रजापति ने महाकोप कर यह शाप दिया कि तुम जाय अवतार ले असुर हो। इस बात के सुनते ही ऋषिपुत्र अति भय खाय प्रजापति के चरणों पर जाय गिरे और बहुत गिड़गिड़ाय अति बिनती कर बोले कि, कृपासिन्धु! आपने तो शाप दिया पर अब कृपा कर कहिये कि इस शाप से कब मोक्ष पावेंगे? उनके दीन वचन सुनि प्रजापति ने दयालु हो कहा कि तुम श्रीकृष्णचन्द्र के दर्शन पाय मुक्त होगे।

चौपाई

इतनी कहत शाप तब भये। ते हिरण्याकुश पुत्र जु भये॥
पुनि वसुदेव के जन्मे आय। तिनको हत्यो कंस ने आय॥
मार तिन्हें माया लै आई। यह हाँ राखि गई सुखदाई॥

इनका दुःख माता देवकी करती है इसलिये हम यहाँ आये हैं कि अपने भाइयों को ले जाय माता को देंगे और उनके चित्त की चिन्ता दूर करेंगे। श्रीशुकदेव जी बोले कि इतना वचन हरि के मुख से निकलते ही राजा बलि ने छहों बालक ला दिये और बहुत सी भेंट आगे धरी, तब प्रभु वहाँ से भाइयों को साथ ले माता के पास आये। माता पुत्रों को देखि अति प्रसन्न हुई, इस बात को सुन सारी पुरी में आनन्द हुआ और उनका शाप छूटा।

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

वे गुरुकों धमावें, वे भंगी, वे वैकुण्ठनाथ, वे [illegible], वे [illegible], वे संहारे, वे धरते अवतार, वे अगाध अपार, वे [illegible] [illegible] वे [illegible], वे पढ़ें वेद, वे [illegible], इनका [illegible] [illegible], [illegible] नहीं, वे सबैं [illegible] में, वे [illegible] में।

दो॰ —[illegible] प्रभु की [illegible] रीति। जिन [illegible] जिन [illegible] प्रीति॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज! राजा युधिष्ठिर से श्रीकृष्णचन्द्र ने कहा कि, हे युधिष्ठिर! जिस पर मैं अनुग्रह करता हूँ, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है, इसलिये कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] होता है [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] होने से [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] करता है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हो जाता है। इतनी कथा कह मुनि शुकदेवजी कहने लगे कि, महाराज! और देवता की पूजा करने से [illegible] [illegible] होते हैं पर मुक्ति नहीं मिलती। [illegible]

[illegible]

बात कौन सत्य माने ? यह सदा भस्म लगाये सर्प लिपटाये भयानक भेष किये भूत प्रेतों को संग लिये श्मशान में रहता है, इसकी बात किसके जी में आवे ? महाराज ! यह बात कह श्रीनारायण बोले कि, हे असुरराय ! जो तुम मेरा कहा झूठ न मानो तो अपने शिर पर हाथ रख देख लो।

महाराज ! प्रभु के मुख से इतनी बात सुनते ही माया के वश अज्ञान हो ज्यों वृकासुर ने अपने शिर पर हाथ धरा त्यों जल कर भस्म का ढेर हुआ। असुर के मरते ही सुरपुर में आनन्द के बाजन बजने लगे और लगे देवता जय जयकार कर फूल बर्षाने, विद्याधर गन्धर्व किन्नर हरिगुण गाने। उस काल हर ने हरि को स्तुति कर विदा किया और वृकासुर को मोक्ष पदार्थ दिया। श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज ! इस प्रसंग को जो सुने सुनावेगा सो निस्सन्देह हरिहर की कृपा से परम पद पावेगा।

द्विजकुमार-हरण

श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज ! एक समय सरस्वती के तीर सब ऋषि मुनि बैठे तप यज्ञ करते थे, कि उनमें से किसी ने पूछा कि ब्रह्मा विष्णु महेश इन तीनों देवताओं में बड़ा कौन है ? सो कृपा कर कहो। इसमें किसी ने कहा कि विष्णु, किसी ने कहा ब्रह्मा, और किसी ने महादेव, पर सब ने मिल एक को बड़ा न बताया। तब कई एक बड़े २ मुनीश्वरों ऋषीश्वरों ने कहा कि हम यों तो किसी की बात नहीं मानने। पर हाँ, जो कोई इन

करता हूँ कि जो मैं तेरा पुत्र काल के हाथ से बचाऊँ तो तेरे मरे हुए लड़के जहाँ पाऊँ तहाँ से ले आन तुझे दिखाऊँ और वे भी न मिलें तो गाण्डीव धनुष समेत अपने तईं आग में जलाऊँ। महाराज! यह प्रतिज्ञा कर जब अर्जुन ने ऐसा कहा, तब वह ब्राह्मण सन्तोष कर अपने घर गया। पुनि पुत्र होने के समय फिर अर्जुन के निकट आया उस काल अर्जुन धनुष बाण ले उसके साथ उठ धाया आगे वहाँ जाय उसका घर अर्जुन ने बाणों से ऐसा छाया कि जिसमें पवन भी प्रवेश न कर सके और आप धनुष बाण लिये उसके चारों ओर फिरने [illegible]

[illegible]

मूर्ति विराजे हैं और ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र आदि सब देवता सन्मुख खड़े स्तुति करते हैं। महाराज! ऐसा स्वरूप देख अर्जुन और श्रीकृष्णचन्द्र जी ने प्रभु के सोंहीं जाय दण्डवत् कर हाथ जोड़ कर अपने आने का सब कारण कहा। बात के सुनते ही प्रभु ने ब्राह्मण के बालक सब मँगाय दीने और अर्जुन ने देख भाल प्रसन्न हो लीने तब प्रभु बोले :—

तुम दोउ मेरी कला जु आहि। हरि अर्जुन देखो चित चाहि॥
भार उतारन भूपर आये। साधु सन्त को बहु सुख दये॥
असुर दैत्य तुम सब सँहारे। सुर नर मुनि के काज सँवारे॥
मेरे अंश जो तुम में हैं। पूरण काम तुम्हारे हैहैं॥

इतना कह भगवान् ने अर्जुन और श्रीकृष्ण जी को बिदा किया। वे बालक ले पुरी में आये द्विज के पुत्र द्विज ने पाये, घर घर आनन्द मङ्गल भये बधाये। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज!

चौ॰—जो यह कथा सुनै धरि ध्यान। तिनके पुत्र होवें बलवान॥

सय्यद इंशाअल्ला खाँ—मृत्यु १८७५

आपके पिता का नाम मीर माशा अल्लाह खाँ था। वे दरबारी हकीम थे और कवि भी थे। इनका खानदान नजफ़ का था। इनके पूर्वज स्वदेश-निवासी थे और किसी कारण वहाँ से आकर काश्मीर में रहने लगे थे। नवाब [illegible] के समय में वे काश्मीर से दिल्ली और वहाँ से फिर मुर्शिदाबाद [illegible] वहीं पर इंशाअल्ला खाँ का जन्म [illegible]

[illegible]

रानी केतकी की कहानी

किसी देस में किसी राजा के घर एक बेटा था। उसे उसके माँ बाप और सब घर के लोग कुँवर उदैभान करके पुकारते थे। सचमुच उसके जोबन की जोत में सूरज की एक सोत आ मिली थी। उसका अच्छापन और भला लगना कुछ ऐसा न था जो किसी के लिखने और कहने में आ सके। पन्द्रह बरस भरके उसने सोलहवें में पाँव रक्खा था। कुछ यों ही सी उसकी मसें भीनती चली थीं। अकड़ तकड़ उसमें बहुत सारी थीं। किसी को कुछ न समझता था पर किसी बात के सोच का घर घाट न पाया था और चाह की नदी का पाट उसने देखा न था। एक दिन हरियाली देखने को अपने घोड़े पर चढ़ के उसे अठखेल और अल्हड़पन के साथ देखता भालता चला जाता था। इतने में जो एक हिरनी उसके सामने आई तो उसका जी लोट पोट हुआ। उस हिरनी के पीछे सब को छोड़ छाड़ कर घोड़ा फेंका। भला कोई घोड़ा उसको पा सकता था? जब सूरज छिप गया और हिरनी आँखों से ओझल हुई तब तो कुँवर उदैभान भूखा प्यासा उनींदा, जँभाइयाँ और अँगड़ाइयाँ लेता हक्का बक्का होके आसरा लगा ढूँढ़ने। इतने में अमराइयाँ ध्यान चढ़ी उधर चल निकला तो क्या देखता है जो चालीस पचास रण्डियाँ झूला डाले पड़ी झूल रही हैं और सावन गातियाँ हैं। ज्यों ही उन्होंने उसको देखा—तू कौन ? तू कौन ? की चिंघाड़ सी पड़ गई।

लावे।' और शुभ घड़ी शुभ मुहूरत देख के रानी केतकी के माँ बाप के पास भेजा।

बाम्हन जो शुभ मुहूरत देखकर हड़बड़ी से गया था उस पर बुरी घड़ी पड़ी। सुनते ही रानी केतकी के माँ बाप ने कहा 'हमारे उनके नाता नहीं होने का। उनके बाप दादे हमारे बाप दादे के आगे सदा हाथ जोड़ कर बातें किया करते थे और टुक जो तेवरी चढ़ी देखते थे बहुत डरते थे। क्या हुआ जो अब वह बढ़ गए ऊँचे पर चढ़ गए, जिन के माथे हम बाएँ पाँव के अँगूठे से टीका लगावें वह महाराजों का राजा हो जावे। किसी का मुँह जो यह बात हमारे मुँह पर लावे।' बाम्हन ने जल भुन के कहा 'अगले भी बिचारे ऐसे ही बुद्ध हुए हैं। राजा सूरजभान भी भरी सभा में कहते थे हममें उनमें कुछ गोत का तो मेल नहीं। यह कुँवर की हठ से कुछ हमारी नहीं चलती नहीं तो ऐसी ओछी बात कब हमारे मुँह से निकलती।' यह सुनते ही उस महाराज ने बाम्हन के सिर पर फूलों की चँगेर फेंक मारी और कहा 'जो बाम्हन की हत्या का धड़का न होता तो तुमको अभी चक्की में दलवा डालता' और अपने लोगों से कहा 'इसको ले जाओ और ऊपर एक अँधेरी कोठरी में मूँद रक्खो।' जो इस बाम्हन पर बीती सो सब उदैभान के माँ बाप ने सुनी। सुनते ही लड़ने को अपना ठाट बाँध भादों के दल बादल जैसे घिर आते हैं चढ़ आया। जब दोनों महाराजों में लड़ाई होने लगी रानी केतकी सावन भादों के रूप रोने लगी और दोनों के जी में यह आ गई यह कैसी चाहत जिस में लोहू बरसने लगा

केतकी के बाप महाराजा जगतपरकास को सुनिये। उनके घर का घर गुरु जी के पांव पर गिरा और सब ने सर झुका कर कहा 'महाराज यह आप ने बड़ा काम किया। हम सब को रख लिया। जो आज आप न पहुँचते तो क्या रहा था। सब ने मर मिटने की ठान ली थी। इन पापियों से कुछ न चलेगी, यह जानते थे। राज पाट हमारा अब निछावर करके जिसको चाहिये दे डालिए। राज हमसे नहीं थम सकता। सूरजभान के हाथ से आपने बचाया। अब कोई उनका चचा चंदरभान चढ़ आवेगा तो क्या बचना होगा। आपने आप में तो सकत नहीं फिर ऐसे राज का फिट्टे मुँह कहाँ तक आपको सताया करें। 'जोगी महेन्दर गिर ने यह सुनकर कहा 'तुम हमारे बेटा हो, आनन्दें करो, दन दनावो, सुख चैन से रहो। अब वह कौन है जो तुम्हें आँख भर कर और ढब से देख सके। यह बघम्बर और यह भभूत हमने तुमको दिया। जो कुछ ऐसी गाड़ पड़े तो इसमें एक रोंगटा तोड़ आग में फूँक दीजिये। यह रोंगटा फुकने न पावेगा जो बात की बात में हम आ पहुँचेंगे। रहा भभूत, सो इस लिये है जो कोई इसे अञ्जन करे वह सबको देखे और उसे कोई न देखे जो चाहे सो करे।

गुरु महेन्दर गिर के पांव पूजे और 'धन धन महाराज' कहे। उनसे तो कुछ छिपाव न था। महाराज जगतपरकास उनको मुर्छल करते हुए अपनी रानियों के पास ले गये। सोने रूपे के फूल गोद भर भर सबने निछावर की और माथे रगड़े। उन्होंने सबकी पीठें

सत्यदास ने कहा 'अमृत को क्या मुझे भी अपना भी भी इसमें [illegible] जरा नहीं, उनके एक बार के मूल्य आने पर एक भी तो क्या [illegible] भी शरीर भी हो तो दे डाले।" यही चेतसी को शिक्षा ने ले [illegible] दे का अमृत दिया। कई दिन तक और निर्धन अपनी [illegible] घर के सामने शेरनियों के साथ रोजाई करते हैं जो [illegible] को सौ सौ बार बोलियों से निरादर हुआ किया। क्या करें! [illegible] पुत्र भी भी कहने को करोड़ों पोतियों के भी तो क्यों न क्या करे।

एक समय वहाँ [illegible] प्रजा के लालच में दो बोल [illegible] भाग में [illegible] है तू [illegible]

[illegible]

है जो मैं माँ बाप राज पाट लाज छोड़कर हिरन के पीछे दौड़ती करछालें मारती फिरूँ पर अरी तू तो बड़ी बावली चिड़िया है जो यह बात सच जानी और मुझ से लड़ने लगी।

दस पन्द्रह दिन पीछे एक दिन रानी केतकी बिन कहे मदनबान के वह भभूत आँखों में लगा के घर से बाहर निकल गई। कुछ कहने में आता नहीं जो माँ बाप पर हुई। सब ने यह बात ठहराई, गुरु जी ने कुछ समझ कर रानी केतकी को अपने पास बुला लिया होगा। महाराज जगतपरकाश और महारानी कामलता राज पाट उस बियोग में छोड़ छाड़ के एक पहाड़ की चोटी पर जा बैठे और किसी को अपने लोगों में से राज थामने को छोड़ गये। बहुत दिनों पर पीछे एक दिन महारानी ने महाराज जगतपरकाश से कहा रानी केतकी का कुछ भेद जानती होगी तो मदनबान जानती होगी। उसे बुलाकर पूछो तो। महाराज ने उसे बुला कर पूछा तो मदनबान ने सब बात खोलियाँ। रानी केतकी के माँ बाप ने कहा अरी मदनबान जो तू भी उसके साथ होती तो हमारा जी भरता—अब जो वह तुझे ले जाये तो कुछ हचर पचर न कीजियो। उसके साथ ही लीजियो। जितना भभूत है तू अपने पास रख। हम कहाँ इस राख को चूल्हे में डालेंगे. गुरु जी ने दोनों राज का खोज खोया. कुँवर उदैभान और उसके माँ बाप दोनों अलग हो रहे। जगतपरकाश और कामलता को यों तलपट किया। भभूत न होती तो यह बातें काहे को सामने

तली का चढ़ाव उतार ऐसा दिखाई न दे जिसकी गोद पँखुरियों से भरी हुई न हो ।

राजा इन्दर ने कह दिया, 'वह रंडियाँ चुलबुलियाँ जो अपने मद में उड़ चलियाँ हैं उन से कह दो—सोलह सिंगार बाल गजमोती पिरो अपने अपने अचरज और अचम्भे के उड़नखटोलों को इस राज से लेकर उस राज तक अधर में छत सी बाँध दो । कुछ उस रूप से उड़ चलो जो उड़नखटोलियों की क्यारियाँ और फुलवारियाँ सैकड़ों कोस तक हो जायँ और अधर ही अधर मिरदंग बीन जलतरंग मुँहचङ्ग घुँघुरू तबले घंटताल और सैकड़ों इस ढब के अनोखे बाजे बजते आएँ और उन क्यारियों के बीच में हीरे पुखराज अनबेध मोतियों के झाड़ और लालपटों की भीड़भाड़ की झमझमाहट दिखाई दे और इन्हीं लालपटों में से हथफूल फुलझड़ियाँ जाही जुही कदम गेंदा चमेली इस ढब छुटने लगें जो देखने वालों की छातियों के पेवाड़ खुल जाएँ और पटाखे जो उछल उछल फूटें उनमें से हँसनी सुपारी और बोलनी करौती ढल पड़े और जब तुम सबको हँसी आवे तो चाहिए उस हँसी से मोतियों की लड़ियाँ झड़ें जो सब के सब उनको चुन चुन के राजे हो जायें । डोमनियों के रूप में सारंगियाँ छेड़ छेड़ सोहलें गाओ, दोनों हाथ हिला के उँगुलियाँ नचाओ, जो किसी ने सुनी हो वह ताव भाव व चाव देखाओ, ठुड्डियाँ गिनगिनाओ, नाक भौं तान तान भाव बताओ, कोई छुट कर रह न जाओ । ऐसा चाव लाखों बरस में होता है' । जो जो राजा इन्दर ने अपने मुँह से निकाला था आख

का हाल कुछ [illegible]

[illegible]

[illegible]

तब राजा जनमेजय ने वैशम्पायन ऋषि से कहा " ऐ महाराज सुना है जो स्थान पर आके कुछ दिन के बीते पर पिता के शाप से जीवित ही नासिकेत यम के पास गए और आए सो सब कृपा कर हम को सुनाइए कि जिस से सन्देह मेरा दूर होए" ।

वे बोले हे राजा ! अति आश्चर्य्य कथा है , तुम्हारी भक्ति से बहुत प्रसन्न हो मैं कहता हूं, एक चित्त हो सुनो—

इस प्रकार राजा रघु की बेटी चन्द्रावती को ब्याह साथ ले फिर उद्दालक तपस्या करने लगे। और नासिकेत को योग की श्रद्धा हुई सो वे लगे योग करने।

एक दिन पिता ने उनको आज्ञा दी कि पुत्र ! आज हमको अग्निहोत्र यज्ञ करना है, तुम कन्द मूल फूल फल जितना मिले सो शीघ्र जा ले आवो ।

सुनते ही वे उठ खड़े भये और किसी घने बन में जा पहुंचे वहाँ हंस सारसों से सुशोभित ऐसा कोई सुन्दर सरोवर देखा कि जहाँ अच्छा निर्मल पानी, तिस में भांति भांति के कमल फूले थे, और उसके तट के वृक्ष सब अमृत समान फलों से फले थे । तब हर्षित हो उसके तट पर जा विधि से स्नान सन्ध्या कर शिव की पूजा करने लगे और समाधि लगाई, सौ बरस दिन उनको वहां बीत गया । पीछे जब ध्यान छूटा तो तुरन्त कन्द मूल फूल फल कुश वो ईंधन ले पिता के पास आन पहुँचे । देखते ही वे क्रोध से लाल आंख कर बोले—

कि 'धन्य हो ! आज तुम सा पुण्यात्मा दूसरा कोई नहीं, तुम साक्षात् धर्म के अवतार हो, इस लोक में भी तुमने बड़ा पद पाया है और उस लोक में भी इससे अधिक मिलेगा, तुम मनुष्य और ईश्वर दोनों की आँखों में निर्दोष और निष्पाप हो। सूर्य के मण्डल में लोग कलंक बतलाते हैं पर तुम पर एक छींटा भी नहीं लगाते।"

सत्य बोला कि "भोज, जब मैं इन पेड़ों के पास था जिन्हें तू ईश्वर की भक्ति और जीवों की दया के बतला है, तब तो इनमें फल फूल कुछ भी नहीं थे, निरे ठूँठ से खड़े थे। ये लाल, पीले और सफेद फल कहाँ से आ गए ? ये सचमुच इन पेड़ों में फल लगे हैं या तुझे फुसलाने और वस करने को किसी ने उनकी टहनियों से लटका दिये हैं ? चल, उन पेड़ों के पास चल कर देखें तो सही। मेरी समझ में तो यह लाल लाल फल, जिन्हें तू अपने दान के प्रभाव से लगे बतलाता है, यश और कीर्ति फैलाने की चाह अर्थात् पाने की इच्छा ने इस पेड़ में लगाए हैं।" निदान ज्योंही सत्य ने उस पेड़ के छूने को हाथ बढ़ाया राजा सपने में क्या देखता है कि वह सारे फल जैसे आसमान से ओले गिरते हैं एक आन की आन में धरती पर गिर पड़े। धरती सारी लाल हो गई, पेड़ों पर सिवाय पत्तों के और कुछ न रहा। सत्य ने कहा कि "राजा ! जैसे कोई चीज़ को मोम से चिपकाता है उसी तरह तू ने अपने भुलाने की प्रशंसा की इच्छा से ये फल इस पेड़ पर लगा लिए थे सत्य के तेज से वह मोम गल गया, पर ठूँठ का ठूँठ रह गया। जो तूने दिया और किया सब दुनिया के

बीच २ में पंख वाले सांप और बिच्छू भी दिखलाई देते थे। राजा घबड़ा कर चिल्ला उठा कि "यह मैं किस आपत्ति में पड़ा! इन कमबख्तों को यहां किस ने आने दिया!" सत्य बोला "राजा, सिवाय तेरे इनको यहां और कौन आने देता? तू ही तो इन सब को लाया है, यह सब तेरे मन की बुरी वासनाएं हैं। तूने समझा था कि जैसे समुद्र में लहरें उठा और मिटा करती हैं, उसी तरह मनुष्य के मन में भी संकल्प की मौजें उठ कर मिट जाती हैं। पर रे मूढ़, याद रख कि आदमी के चित्त में ऐसा कोई विचार कोई नहीं उठता जो कर्मकर्ता, भाग्यदाता, परमेश्वर के सामने प्रत्यक्ष नहीं हो जाता। यह चिमगादड़ और कुत्ते और सांप बिच्छू और कीड़े मकोड़े जो तुझे दिखलाई देते हैं वे सब काम, क्रोध, मोह, लोभ, मत्सर, अभिमान, आदि तेरे ही संकल्प विकल्प हैं जो दिन रात तेरे अन्तःकरण में उठा करते थे और [illegible] चिमगादड़ और कुत्ते और सांप बिच्छू और कीड़े मकोड़े [illegible] तरह तेरे हृदय के आकाश में उड़ते [illegible] मैं किसी राजा को चोर [illegible] कुछ माल पर लोभ नहीं [illegible] मान नहीं हुआ!" राजा ने [illegible] और अत्यन्त [illegible] ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जो [illegible] और मन से बुरे [illegible] बड़ा कठिन है। जो [illegible]

गिरी थी और उस अहङ्कार की मूर्ति पर ऐसी एक बिजली गिरी कि वह धरती पर औंधे मुँह आ पड़ी। "त्राहि माँ, त्राहि माँ" कहके भोज जो चिल्लाया उसकी आंख खुल गई और सपना सपना हो गया।

इस अन्तर में रात बीत कर सवेरा हो गया था, आकाश में लाली दौड़ आई थी। चिड़ियाँ चहचहा रही थीं। एक ओर से शीतल मंद सुगन्ध हवा चली आती थी, दूसरी ओर बीन और शंख की ध्वनि, बन्दीजन राजा का यश गाने लगे, हरकारे हर तरफ़ काम को दौड़े। कमल खिले, कुमुद कुम्हलाये, राजा पलंग से उठा, पर जी भारी, माथा धमे हुए, न हवा अच्छी लगती थी, न गाने बजाने की कुछ सुध बुध थी। उठते ही पहले यह आज्ञा दी कि इस नगर में जो अच्छे से अच्छे पण्डित हों शीघ्र उनको मेरे पास लाओ। मैंने एक सपना देखा है कि जिसके आगे अब यह सारा संसार सपना मालूम होता। उस सपने के स्मरण ही से मेरे रोंगटे खड़े हुए जाते हैं।

राजा के मुख से आज्ञा निकलने की देर थी कि चोबदारों ने तीन पण्डितों को जो उस समय वसिष्ठ, याज्ञवल्क्य और बृहस्पति के समान प्रख्यात थे, बात की बात में राजा के सामने ला खड़ा किया। राजा का मुँह पीला पड़ गया, माथे पर पसीना आ आया। पूछा कि "वह कौनसा उपाय है जिससे यह पापी मनुष्य ईश्वर के कोप से छुटकारा पावे।" उनमें से एक बूढ़े पण्डित ने आशीर्वाद देकर निवेदन किया कि "महाराज, धर्मावतार यह सब तो आपके शत्रुओं को होना चाहिये। आपके पवित्र पुण्यात्म

[illegible] अन्याय कभी नहीं करेगा जो जैसा करेगा वैसा ही उससे [illegible] बदला पावेगा।"

तब तीसरा पण्डित आगे बढ़ा और यों कहना आरम्भ किया "महाराजाधिराज, परमेश्वर के यहाँ से हम लोगों को वैसा बदला मिलेगा कि जैसा हम लोग काम करते हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। आप बहुत यथार्थ कहते हैं, परमेश्वर अन्याय कभी नहीं करेगा पर यह इतने प्रायश्चित्त और होम और यज्ञ और जप तप तीर्थयात्रा किस लिये बनाये गये हैं? यह इसी लिये हैं कि जिस से परमेश्वर हम लोगों का अपराध क्षमा कर बैकुण्ठ में अपने पास रहने को ठौर देवे।" राजा ने कहा "देवता जी, कल तक तो मैं भी यह सब बात मान सकता था। लेकिन अब तो मुझे इन कामों में से ऐसा कोई नहीं दिखलाई देता, जिसके करने से यह पापी मनुष्य पवित्र पुण्यात्मा हो जावे। कौन सा जप, तप, तीर्थयात्रा, होम, यज्ञ और प्रायश्चित्त है जिसके करने से हृदय शुद्ध हो और कमीनापन न आने पावे। आदमी को फुसला देना तो सहज है पर उस घट घट के अन्तर्यामी को कोई क्योंकर फुसलावे? जब मनुष्य का मन ही पाप से भरा हुआ है तो फिर उसके कुछ करने से क्या बन आवे? पहले आप उस स्वप्न के [illegible] को देखा है फिर पीछे यह [illegible] बतलाइये [illegible] मनुष्य ईश्वर के कोप से छुटकारा पाता है"।

निदान, राजा ने जो कुछ रात को स्वप्न में देखा था सब ज्यों का त्यों उस पण्डित को सुनाया। पण्डित जी ने सुनते ही [illegible] हो गये। सिर झुका लिया। राजा ने [illegible]

रानी भवानी

रानी भवानी बङ्गाले के ज़िले राजशाही में छातिन गाँव में चौधरी आत्माराम की लड़की थी और नाटौर के ज़मींदार राजा रामजीवन राय के बेटे रामकान्त से ब्याही गई। जैसी वह सुन्दर थी वैसी ही सुलक्षण भी थी। और धर्म और परोपकार में निष्ठा उसकी लड़कपन से रहती थी। दयाराम नाम राजा रामजीवन का पुराना खैरख्वाह नौकर था। राजा रामकान्त को ज़मींदारी के काम में गाफ़िल देखकर वह एक दिन समझाने और नसीहत देने लगा। राजा रामकान्त ने इस बात पर खफ़ा होकर उसे अपने यहाँ से निकाल दिया। वह बड़ा चतुर और होशियार था। बङ्गाले के सूबेदार नवाब अलीवर्दीख़ाँ के दरबार में हाज़िर रहने लगा। एक दिन अर्ज़ की कि, जहाँपनाह! राजा रामकान्त ने बत्तीस लाख रुपया घर में जमा किया और दो लाख का सरपेच मोल लिया है। पर आपका रुपया अदा नहीं करता, बाक़ी डालता चला आता है और सरकारी मालगुज़ारी को बातों में उड़ाना चाहता है! नवाब ने पूछा कि, तू बत्तीस लाख रुपये का उसके घर में निशान दे सकेगा। उसने कहा, बेशक। नवाब ने फिर पूछा कि राजा रामजीवन के कुटुम्ब में और कोई भी राज के लायक़ है? उसने कहा, उनका भतीजा देवी प्रसाद बड़ा ईमानदार ज़मींदारी के काम में होशियार है। नवाब ने उसी दम हुक्म दिया कि फ़ौज जावे और रामकान्त का घर-बार लूट लेवे और देवीप्रसाद उसकी जगह राजा होवे। मुसल्मानों की

घबराता जाता है।" देवीप्रसाद यह सुनकर बड़ा दुखी हुआ और अपना सारा हाल नवाब से कहा। नवाब बोला कि जो तुम्हे सारी खिलअत पहनाता [illegible] है तो तू जरूर घबराता है, मैं ऐसे घबराने को कभी राजा न बनाऊँगा और फिर दयारामसे पूछा कि रामजीवन राय के कुल में कौन दूसरा आदमी राज के लायक है? उसने कहा, खुदावन्द! उनका बेटा ही रामकान्त बड़ा ईमानदार और [illegible] के काम में होशियार मौजूद है। निदान नवाब ने उसी [illegible] रामकान्त को राजकी खिलअत बख्शी और देवीप्रसाद को दरबार से निकलवा दिया। तब से राजा रामकान्त [illegible] बहुत [illegible] रहा और सोलह बरस राज्य करके [illegible] को [illegible]। रानी भवानी के लड़का कोई न था—दो हुए थे, जो दोनों बालकपन में ही मर गये थे। सारा काल [illegible] का [illegible] देखती थी और दान और धर्म में बड़े राजाओं का [illegible] करती थी। [illegible] लाख [illegible] हजार रुपया [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] लाख [illegible] के [illegible] [illegible] कर दी थी। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] रहा [illegible]। [illegible] छोटी-छोटी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] दिये हैं। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] देकर [illegible] दिये हैं। [illegible]

(एक बालक सिंघ के बच्चे को घसीटता हुआ लाता है, और दो तपस्विनी उसे रोकती हुई आती हैं)

बालक—अरे सिंघ, तू अपना मुँह खोल, मैं तेरे दाँत गिनूँगा।

पहली तपस्विनी—हे अन्यायी, तू इन पशुओं को क्यों सताता है, हम तो इन्हें बाल-बच्चों के समान रखती हैं। हाय! तेरा साहस बढ़ता ही जाता है। तेरा नाम ऋषियों ने सर्वदमन रक्खा है, सो ठीक ही है!

दुष्यंत—[आप-ही-आप] अहा! क्या कारण है कि मेरा स्नेह इस बालक में ऐसा होता आता है, जैसा पुत्र में होता है। हो न हो, यह हेतु है कि मैं पुत्र-हीन हूँ।

दूसरी तपस्विनी—जो तू बच्चे को छोड़ न देगा, तो यह सिंघनी तुझपर दौड़ेगी।

बालक—[मुस्काकर] ठीक है, सिंघनी का मुझे ऐसा ही डर है! [मुँह चिढ़ाता है]

दुष्यंत—

दीखत बालक मोहि यह तेजस्वी बलवीर,
काठ काज जैसे अगिनि ठाडो है मतिधीर।

पहली तपस्विनी—हे प्यारे बालक, तू सिंघ के बच्चे को छोड़ दे, मैं तुझे और खिलौना दूँगी।

बालक—कहाँ है, ला, दे दे।

(हाथ पसारता है)

मातलि—प्रजापतियों की कृपा का यही प्रभाव है।

दुष्यंत—हे भगवन्, आपकी इस दासी का विवाह मेरे साथ गांधर्व रीति से हुआ था, फिर कुछ काल बीते मायके के लोग इसे मेरे पास लाए। उस समय मेरी ऐसी सुध भूली कि इसे पहचान न सका, और इसका त्याग करके मैं आपके सगोत्री कन्व का अपराधी बना। पीछे अंगूठी देखकर मुझे सुध आई कि कन्व की बेटी से मेरा ब्याह हुआ था, यह वृत्तांत अचरज-सा दीखता है।

लखि सनमुख हाथी जिमि कोई कहै कि यह हाथी नहिं होई,
निकसि जाय तब शंका लावे, हाँ कबहूँ-कबहूँ ना गावे।
खोज देखि फिर हाथी जाने निश्चय भूल आपनी माने,
याही विधि गति मो मन केरी, उलटि-पलटि लीनी बहु फेरि।

कश्यप—हे बेटा, जो कुछ अपराध हुआ, उसका सोच अपने मन से दूर कर, क्योंकि तुझे उस समय भ्रम ने घेर लिया था, अब सुन।

दुष्यंत—मैं एकाग्र-चित्त होकर सुनता हूँ, आप कहें।

कश्यप—जब अप्सरा-तीर्थ पर जाकर मेनका ने शकुन्तला को व्याकुल देखा तो उसे लेकर अदिति के पास आई। मैंने उसी समय ध्यान-शक्ति से जान लिया कि तैंने अपनी पतिव्रता को केवल दुर्वासा के शाप-वश छोड़ा है, और इस शाप की अवधि मुंदरी के दर्शन तक रहेगी।

दुष्यंत—[आ-हा-आप] तो मैं धर्मपत्नी परित्याग के अपवाद से बच गया!

स्वामी दयानन्द (सन् १८२४–१८८३)

स्वामी जी का जन्म सन् १८२४ में गुजरात देश के मोरवी नाम नगर में हुआ। आपका जन्मनाम मूलशंकर था। आपके पिता पं० अम्बाशंकर एक औदीच्य ब्राह्मण और जागीरदार थे।

आप की अवस्था जब १४ बरस की थी तो आपने पिता की आज्ञा से शिवरात्रि व्रत रक्खा। शिवपूजन के बाद रात को एक चूहे को शिवलिङ्ग पर चढ़ाई हुई मिठाई आदि को खाते देख आप को मूर्तिपूजा से घृणा सी आई और साथ ही सच्चे मार्ग की खोज की लगन हो गई।

बीस वर्ष की अवस्था में आप घर छोड़ निकल पड़े और योग्य गुरु की खोज करने लगे। अन्त में मथुरा में स्वामी विरजानन्द को अपना गुरु मान उनसे विद्याभ्यास करने लगे।

स्वामी विरजानन्द से वेदादि शास्त्र पढ़ कर अपने ध्येय का प्रचार करने को आप भारत के प्रान्त प्रान्त में घूमे और आर्य-समाजों का स्थापन किया। आप संस्कृत के अगाध पंडित थे। आपकी मातृभाषा गुजराती थी तो भी आपने अपने सब ग्रन्थ हिन्दी में ही लिखे। आप हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाना चाहते थे।

आपने सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि, वेदादिभाष्यभूमिका आदि अनेकों ग्रन्थ हिंदी में ही लिखे हैं।

आपका देहान्त सन् १८८३ में अजमेर में हुआ।

व्यवस्था करे वही श्रेष्ठ धर्म है क्योंकि अज्ञानियों के सहस्रों लाखों क्रोड़ों मिल के जो कुछ व्यवस्था करें उसको कभी न मानना चाहिये। जो ब्रह्मचर्य्य सत्यभाषणादि व्रत वेदविद्या वा विचार से रहित जन्ममात्र से शूद्रवत् वर्तमान हैं उन सहस्रों मनुष्यों के मिलने से भी सभा नहीं कहाती। जो अविद्यायुक्त मूर्ख वेदों के न जानने वाले मनुष्य जिस धर्म को कहें उसको कभी न मानना चाहिये क्यों कि जो मूर्खों के कहे हुए धर्म के अनुसार चलते हैं उनके पीछे सैंकड़ों प्रकार के पाप लग जाते हैं। इस लिये तीनों अर्थात् विद्यासभा धर्मसभा और राजसभाओं में मूर्खों को कभी भरती न करे किन्तु सदा विद्वान और धार्मिक पुरुषों को स्थापन करे।

ऐसे लोग राजा और राजसभा के सभासद् तब हो सकते हैं कि जब वे चारों वेदों की कर्मोपासना ज्ञान क्रियाओं के जाननेवालों से तीनों विद्या सनातन दण्डनीति न्यायविद्या आत्मविद्या अर्थात् परमात्मा के गुण कर्म स्वभावरूप को यथावत् जाननेरूप ब्रह्मविद्या और लोक से वार्ताओं का आरम्भ (कहना और पूछना) सीखकर सभासद् वा सभापति होसकें। सब सभासद् और सभापति इन्द्रियों को जीतने अर्थात् अपने वश में रख के सदा धर्म में वर्त्तें और अधर्म से हटे हटाए रहें इसलिए रात दिन नियत समय में योगाभ्यास भी करते रहें क्योंकि जो जितेन्द्रिय कि अपनी इन्द्रियों (जो मन, प्राण और शरीर प्रजा है इस) को जीते बिना बाहर की प्रजा को अपने वश में स्थापन करने को समर्थ कभी नहीं हो सकता। दृढ़ोत्साही होकर काम से दश और क्रोध से

जो पुरुष (अर्थ) सुवर्णादि रत्न और (काम) में नहीं फँसते हैं उन्हीं को धर्म का ज्ञान प्राप्त होता है जो धर्म के ज्ञान की इच्छा करें वे वेद द्वारा धर्म का निश्चय करें क्योंकि धर्माऽधर्म का निश्चय विना वेद के ठीक २ नहीं होता।

इस प्रकार आचार्य अपने शिष्य को उपदेश करे और विशेष कर राजा इतर क्षत्रिय, वैश्य और उत्तम शूद्र जनों को भी विद्या का अभ्यास अवश्य करावें। क्योंकि जो ब्राह्मण हैं वे ही केवल विद्याभ्यास करें और क्षत्रियादि न करें तो विद्या, धर्म, राज्य और धनादि की वृद्धि कभी नहीं हो सकती। क्योंकि ब्राह्मण तो केवल पढ़ने पढ़ाने और क्षत्रियादि से जीविका को प्राप्त होके जीवन धारण कर सकते हैं। जीविका के आधीन और क्षत्रियादि के आज्ञादाता और यथावत् परीक्षक दण्डदाता न होने से ब्राह्मणादि सब वर्ण पाखण्ड ही में फँस जाते हैं और जब क्षत्रियादि विद्वान् होते हैं तब ब्राह्मण भी अधिक विद्याभ्यास और धर्मपथ में चलते हैं और उन क्षत्रियादि विद्वानों के सामने पाखण्ड झूठा व्यवहार भी नहीं कर सकते और जब क्षत्रियादि अविद्वान् होते हैं तो वे जैसा अपने मन में आता है वैसा ही करते कराते हैं। इसलिये ब्राह्मण भी अपना कल्याण चाहें तो क्षत्रियादि को वेदादि सत्य शास्त्र का अभ्यास अधिक प्रयत्न से करावें। क्योंकि क्षत्रियादि ही विद्या, धर्म, राज्य और लक्ष्मी की वृद्धि करने हारे हैं, वे कभी भिक्षावृत्ति नहीं करते इसलिये वे विद्याव्यवहार में पक्षपाती भी नहीं हो सकते। जब सब वर्णों में विद्या सुशिक्षा होती है तब

प्रभाकर परीक्षा की सहायक पुस्तकें

आलोचना-समुच्चय

(लेखक—श्री रामकृष्ण शुक्ल एम. ए. 'शिलीमुख'
प्रोफेसर, महाराजा कालिज, जयपुर)

इसमें विद्वान लेखक ने हिन्दी के प्रायः सब प्रमुख महाकवियों—कबीर, सूर, जायसी, तुलसी, मीरा, केशव, बिहारी, भूषण, हरिश्चन्द्र, मैथिलीशरण और प्रसाद—पर गंभीर आलोचनात्मक निबंध लिखे हैं, जिनमें कवियों के काव्य, और उनकी विशेषताओं पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है, तथा कवियों की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया गया है। विश्वविद्यालयों की उच्च कक्षा के विद्यार्थियों, विशेषतः प्रभाकर के परीक्षार्थियों के लिए आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य पुस्तक। पृष्ठ २६०—मूल्य २)

छन्द-रत्नावली की कुंजी

इसमें छन्द-रत्नावली में आए सब छन्दों को सरल और सुबोध भाषा में समझाया गया है। मूल्य ।=) मात्र।

हिंदी भवन, लाहौर